MPPSC

मुख्य परीक्षा

पेपर-2, पार्ट-A

Awarded for
Result Oriented Academy
For UPSC/MPPSC-2019
by **Kamal Nath** (CM M.P.)

Awarded for
Leading E-Learning
Academy of MP-2018
by **Shivraj Singh Chouhan** (CM M.P.)

स्थापना पंजीयन क्रमांक : C/177429

शर्मा एकेडमी®

an Institute for IAS/IPS, MPPSC

इकाई–1	पेज नं.
• **भारतीय संविधान** – निर्माण (4), विशेषताएँ (9) , मूल ढाँचा 10 एवं प्रमुख संसोधन 13 • **वैचारिक तत्व** – उद्देशिका 16, मूल अधिकार 19, राज्य के नीति निदेशक तत्व 41, मूल कर्त्तव्य 45 • **संघवाद 48, केन्द्र** – राज्य संबंध 52, उच्चतम न्यायालय 72, उच्च न्यायालय 82, न्यायिक पुनरावलोकन 91, न्यायिक सक्रियता 95, लोक अदालत 99 एवं जनहित याचिका102	**1-105**

इकाई–2	पेज नं.
• भारत निर्वाचन आयोग 2, नियंत्रक एवं महा लेखा परीक्षक 4, संघ लोक सेवा आयोग 7, मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग 11 एवं नीति आयोग 15। • भारतीय राजनीति में जाति 25, धर्म 29, वर्ग 33 नृजातीयता, भाषा 34 एवं लिंग 35 की भूमिका, भारतीय राजनीति में राजनीतिक दल 36 एवं मतदान व्यवहार 42, सिविल सोसायटी 44 एवं जन आंदोलन 46, राष्ट्रीय अखंडता तथा सुरक्षा से जुड़े मुद्दे 69।	**1-86**

इकाई–3	पेज नं.
• संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के संदर्भ में जनभागीदारी एवं स्थानीय शासन 2 • **जवाबदेही एवं अधिकार** – प्रतिस्पर्धा आयोग 20 , उपभोक्ता फोरम	**2-74**

21, सूचना आयोग 24, महिला आयोग 28, मानव अधिकार आयोग 33, अजा 45 /अजजा 46 /अपिव आयोग 51, केन्द्रीय सतर्कता आयोग 54। • **लोकतंत्र की विशेषताएँ** – राजनीतिक प्रतिनिधित्व 59, निर्णय प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी 61 • समुदाय आधारित संगठन (CBO) 66, गैर सरकारी संगठन (NGO) 69, एवं स्व–सहायता समूह (SHG) 70 • मीडिया की भूमिका एवं समस्याएँ (इलेक्ट्रॉनिक, प्रिन्ट एवं सोशल मीडिया) 71	

इकाई–4	पेज नं.
भारतीय राजनीतिक विचारक – कौटिल्य 2, महात्मा गाँधी 4, जवाहरलाल नेहरू 9, सरदार वल्लभ भाई पटेल 14, राममनोहर लोहिया 15, डॉ.बी.आर. अम्बेडकर 19, दीनदयाल उपाध्याय 23, जयप्रकाश नारायण 27	**1-31**

इकाई–5	पेज नं.
• **प्रशासन एवं प्रबंधन** – अर्थ, प्रकृति एवं महत्त्व, विकसित एवं विकासशील समाजों में लोक प्रशासन की भूमिका 2 , एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का विकास 11 नवीन लोक प्रशासन 17, लोक प्रशासन के सिद्धांत 20। • **अवधारणाएँ** – शक्ति 58, सत्ता 63, प्राधिकारी 67, उत्तरदायित्व 68 एवं प्रत्यायोजन (Delegation) 69	**1-109**

• संगठन के सिद्धांत 83, पदसोपान 85, नियंत्रण का क्षेत्र 87 एवं आदेश की एकता 92 • लोक प्रबंधन के नवीन आयाम 98, परिवर्तन का प्रबंधन 105 एवं विकास प्रशासन 106	

जाति और राजनीति
(CASTE AND POLITICS)

राजनीतिक भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीति की एक अद्‌भूत विशेषता है। भारत में राजनीति आधुनिकीकरण के प्रारंभ होने के पश्चात् यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी ढंग की राजनीतिक संस्थाएं और लोकतंत्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप परम्परागत संस्था–जातिवाद का अंत हो जायेगा, किंतु स्वाधीनता के बाद की भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ता गया। जहां सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे जाति की शक्ति घटी है वहां राजनीतिक और प्रशासन पर इसके बढ़ते हुए प्रभाव को राजनीतिज्ञों, समाजशास्त्रियों प्रशासनाधिकारियों और केंद्र एवं राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है।

कतिपय विद्वानों की यह मान्यता है कि लोकतांत्रिक एवं प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं की स्थापना के बाद जाति व्यवस्था का भारत में लोप हो जाना चाहिए। अन्य कुछ विद्वानों की धारणा थी कि जाति व्यवस्था परम्परागत शक्ति के रूप में कार्य करती है तथा राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक है। लेकिन वस्तुतः ये मान्यताएं सही नहीं है। इस संबंध में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि– प्रथम, कोई भी सामाजिक तंत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता, अतः यह प्रश्न करना कि क्या भारत मे जाति का लोप हो रहा है, अर्थ–शून्य है। द्वितीय, जाति व्यवस्था आधुनिकरण और सामाजिक परिवर्तन में रूकावट नहीं डालती बल्कि इसको बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। स्थानीय और राज्य स्तर की राजनीति में जातीय संघ और समुदाय निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने में उसी प्रकार की भूमिका अदा करते है जिस प्रकार पश्चिमी देशों मे दबाव गुट (Pressure Groups)। हमारे राजनीतिज्ञ एक अजीब असंमजस की स्थिति में हैं। जहां एक ओर वे जातिगत भेदभाव मिटाने की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर जाति के आधार पर वोट बटोरने की कला में निपुणता हासिल करना चाहते है।

जाति का परम्परागत अर्थ एवं रूप
(TRADITIONAL MEANING AND NATURE OF CASTE)

जाति प्रथा किसी न किसी रूप में संसार के हर कोने में पायी जाती है, पर एक गंभीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिंदू समाज की ही विशेषता है। वैसे इस्लाम और ईसाई समाज भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। यह एक अति प्राचीन व्यवस्था रही है। इसका अभिप्राय पेशे के आधार पर समाज को कई वर्गों में बांट देना है। सामान्यतया यह माना जाता है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति वैदिक काल में हुई। ब्राह्मण धार्मिक और वैदिक कार्यों का संपादन करते थे। क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रबंध करना था। वैश्य कृषि और वाणिज्य संभालते थे तथा शूद्रों को अन्य तीन वर्णों की चाकरी करनी पड़ती थी। शुरू–शुरू में जाति प्रथा के बंधन कठोर न थे और वह जन्म पर नहीं, अपितु कर्म पर आधारित थे। बाद में जाति–प्रथा में कठोरता आती गयी, वह पूरी तरह जन्म पर आधारित हो गयी तथा एक जाति से दूसरी जाति में अंतःक्रिया असंभव हो गयी। अपने मौलिक रूप में दूसरी जाति प्रथा उपयोगी थी। चूंकि वह श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित थी, अतः उसने आर्थिक क्षेत्र मे निपुणता के तत्व का समावेश किया। एक जाति का पेशा उसी जाति में होता था बेटा बाप से अपना पुश्तैनी पेशा सीखता था और प्रायः उसी को अपनी आजीविका के साधन के रूप में अपना लेता था इस प्रथा ने एक जाति और बिरादरी के लोगों में भाई–चारे की भावना को बढ़ाया। एक जाति के लोग एक–दूसरे से भलीभांति परिचित होते थे तथा एक – दूसरे के सुख–दुख में काम आते थे।

प्रो. घुरिये (Ghurye) ने जाति व्यवस्था की छ : विशेषताएं बतलायी है, जो इस प्रकार है –

(i) भारत में जाति ऐसे समुदाय हैं जिनका अपना विकसित जीवन है और इसकी सदस्यता जन्म से ही निश्चित होती है।
(ii) भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति जानता है और जातियों के पदसोपान में ब्राह्मण सबसे ऊपर माना जाता है।
(iii) जतियों के आधार पर खाना–पान और सामाजिक आदान–प्रदान के प्रतिबंध लगे रहते है।
(iv) गांवों तथा शहरों में जाति के आधार पर पृथकता की भावना बनी रहती है।
(v) कुछ जातियां कतिपय विशेष प्रकार के व्यवसायों को अपना पुश्तैनी अधिकार समझती है।
(vi) जातियों की परिधि मे ही वैवाहिक आदान–प्रदान होता है और जातियां कई उप–जातियों में विभक्त होती हैं उप–जातियों में भी वैवाहिक सीमाएं है।

जाति का राजनीति रूप – रजनी कोठारी का दृष्टिकोण

प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक **'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' (Caste in Indian Politics)** में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत में जाति–प्रथा खत्म हो रही है? इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानों जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएं हैं। ज्यादा सही सवाल यह होगा कि जाति–प्रथा पर राजनीति का क्या प्रभाव पड़ रहा है और जाति–पांति वाले सामज में राजनीति क्या रूप ले रही है? जो लोग राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे न तो राजनीति के स्वरूप को ठीक समझ पाये हैं और न जाति के स्वरूप को। भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित हैं अतः न चाहते हुए भी राजनीति को जाति संस्था का उपयोग करना ही पड़ेगा। अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है रजनी कोठारी के शब्दों में, 'जाति को अपने दायरे मे खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लेने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है।' राजनीतिक नेता सत्ता प्राप्त करे के लिए जातिय संगठनों का उपयोग करते है और जातियों के रूप में उनको बना–बनाया संगठन मिल जाता है जिससे राजनीतिक संगठन में आसानी होती है।

जाति व्यवस्था और राजनीति में अंतःक्रिया के संदर्भ में प्रो. रजनी कोठारी ने जाति–प्रथा के तीन रूप प्रस्तुत किया है।

(i) लैकिक रूप (The secular aspect);
(ii) एकीकरण का रूप (The integration aspect);
(iii) चैतन्य रूप (The aspect of consciousness)

(i). **जाति व्यवस्था का लौकिक रूप –** रजनी कोठारी ने जाति व्यवस्था के लौकिक रूप को व्यापक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। जाति व्यवस्था की कुछ बातों पर सबका ध्यान गया है जैसे जाति के अंदर विवाह, छुआछूत और रीति–रिवाजों के द्वारा जाति की पृथक् इकाई को कायम रखने का प्रयत्न, लेकिन इस बात की ओर बहुत ही कम लोगो का ध्यान गया है कि जातियों में अपनी प्रतिद्वन्द्विता एवं गुटबंदी रहती है, प्रत्येक जाति प्रतिष्ठा और सत्ता की प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहती है जाति व्यवस्था के इस लौकिक पक्ष के दो रूप थे– एक शासकीय रूप यानी जाति की और गांव की पंचायत और चौधराहट। दूसरा रूप राजनीतिक था यानी जाति की आंतरिक गुटबंदी और अन्य जातियों से गठजोड़ और प्रतिद्वन्द्विता। पहले इन जातियों का संबंध या गांव की पंचायत और राजा या जमींदार से रहता था। अब जातीय पंचायत के स्थान पर विधान सभाएं और संसद है तथा राजा के स्थान पर राष्ट्रीय सरकार है।

(ii). **जाति व्यवस्था का एकीकरण का रूप –** जाति का दूसरा रूप एकीकरण का है अर्थात् व्यक्ति को समाज से बाधने का है। जाति – प्रथा जन्म के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का समाज में स्थान नियत कर देती है। जाति के आधार पर ही उस व्यक्ति का व्यवसाय और आर्थिक भूमिका निश्चित हो जाती है। चाहे जितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, उसको अपनी जाति से लगाव पैदा हो जाता है, जाति के प्रति उसकी निष्ठा बढ़ने लगती है। यही निष्ठा आगे चलकर बड़ी निष्ठाओं अर्थात् लोकतंत्र और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी विकसित हो जाती है। इस प्रकार जातियां जोड़ने वाली कड़ियां बन जाती है। लोकतंत्र के अंदर विभिन्न समूहों में शक्ति के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती है और विभिन्न जातियों में आपस में मिल–जुलकर गठजोड़ बनाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ताकि वे सत्ता का लाभ प्राप्त कर सकें।

(iii). **जाति व्यवस्था का चैतन्य रूप –** जाति प्रथा का तीसरा रूप चेतना बोध है। कुछ जातियां अपने को उच्च समझती है और इस कारण समाज में उनकी विशेष प्रतिष्ठा होती है। इस कारण कुछ निम्न समझी जाने वाली जातियां भी अपने को उनके साथ जोड़ने की चेष्टा करती है। क्षत्रिय वर्ग के साथ जो प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है, उसके कारण देश के विभिन्न भागों में अनेक जातियों ने इस वर्ण का दावा किया है। कुछ जातियों ने इसी प्रकार ब्राह्मण पद का भी दावा किया है। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप जाति विशेष की स्थिति भी बदलती है।

प्रो. रजनी कोठारी ने जाति के राजनीतिकरण की चर्चा करते हुए कहा है, ''इससे पुराना समाज नयी राजनीतिक व्यवस्था के करीब आया है।'' इस प्रक्रिया को उन्होंने तीन चरणों मे बांटा है –

a) **शक्ति और प्रभाव की प्रतिस्पर्द्धा –** ऊँची जातियों तक सीमित रही–भारत का पुराना समाज जब नयी व्यवस्था के सम्पर्क में आने लगा तो सबसे पहले शक्ति और प्रभाव की स्पर्द्धा समाज की प्रतिष्ठा और जमी हुई जातियों तक सीमित रही।

b) **जाति के अंदर की प्रतिस्पर्द्धी गुटबंदी –** इस चरण में भिन्न जातियों की प्रतिस्पर्द्धा के साथ–साथ जाति के अंदर भी प्रतिस्पर्द्धी गुट बन जाते है। प्रतिद्वंद्वी नेताओं के पीछे गुट बन जाते है।

c) **जाति के बंधन ढीले पड़ना और राजनीति को व्यापक आधार मिलना–** रजनी कोठारी के अनुसार तीसरे चरण में एक ओर राजनीतिक मूल्यों की प्रधानता हुई और जाति–पांति से लगाव कम हुआ, वहां दूसरी ओर शिक्षा, नये शिल्प और शहरीकरण के कारण, समाज में परिवर्तन आया। भौतिक उन्नति की नयी धारणाओं का जोर बढ़ा।

प्रो. रजनी कोठारी का राजनीति में जाति संबंधी निष्कर्ष इस प्रकार है –

(1) आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने के कारण पहले तो जाति–प्रथा का पृथकक्ता की प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ा, बाद में जाति भावना का सामंजस्य हुआ और इसने राजनीतिक संगठन में सहायता दी।

(2) आधुनिक राजनीति में भाग लेने से लोगों की दृष्टि में परिवर्तन हुआ और उनको यह समझ में आ गया कि आज के युग में केवल जाति और सम्प्रदाय से काम नहीं चल सकता।

(3) जहां जाति बड़ी होती है वहां भी उसमें एकता नहीं रहती, उसमें उप–जातियो के भेद होते हे और छोटी जातियां तो अपने बल पर चुनाव भी नहीं जीत सकती है। यदि कोई प्रत्याशी अपनी ही जाति का पक्ष लेता है तो दूसरी जातियां उसके खिलाफ हो जाती है इसलिए चुनाव की राजनीति मे अनेक जातियों का गुट बनाना पड़ता है।

(4) राजनीति में आने के कारण जाति की भावना ढीली पड़ जाती है और अनेक नयी निष्ठाओं का उदय होता है।

(5) आजकल राजनीति में जातिवाद और सम्प्रदायवाद का जोर बढ़ने की शिकायत की जाती है। ऐसा समझा जाता है कि शिक्षा प्रसार, शहरों के विस्तार और औद्योगीकरण के कारण सम्प्रदाय और जाति के बंधन जो ढीले पड़ रहे थे, वे चुनाव की राजनीति के कारण फिर से जोर पकड़ रहे है और इससे देश मे फूट बढ़ेगी जिससे धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र का ढांचा खतरे में पड़ जाएगा, किंतु प्रो. कोठारी का मानना है कि वास्तव मे जाति और राजनीति के मिश्रण से दूसरे ही परिणाम निकलते हैं। इससे राजनीति का जातिकरण होने के बजाय, जाति का राजनीतिकरण हो जाता है। राजनीति ने जाति को लीक से हटाकर नया संदर्भ दे दिया है, जिससे उसका पुराना रूप बदल रहा है।

(6) आधुनिकतावादी नेता जाति–पांति पर भले ही नाक सिकोड़े, परंतु इसके द्वारा राजनीतिक शक्ति उन वर्गों या समूहों के हाथ में पहुंच सकी, जो अब तक उससे वंचित थे।

(7) जाति के आधार पर संघ और संगठन बनते है, जैसे कायस्थ सभा, क्षत्रिय संघ, आदि। सब मिलाकर जातीय संगठनों ने भारत में राजनीति में वही भाग लिया है जो पश्चिमी देशों में विभिन्न हितों व वर्गों के सगठनों ने।

(8) जातियों और सम्प्रदायों के राजनीति में भाग लेने के फलस्वरूप सामूहिक या राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ है और उनकी पृथक्ता कम होकर उनका राजनीतिक एकीकरण हुआ है।

जाति और राजनीति में अंतःक्रिया – सैद्धान्तिक आधार

भारत में जाति और राजनीति मे किस प्रकार का संबंध है? इस संबंध में चार प्रकार से विचार प्रस्तुत किए जाते रहे है–

सर्वप्रथम, यह कहा जाता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संगठन जाति की संरचना के आधार पर हुआ है और राजनीति केवल सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मात्र है। सामाजिक संगठन राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप निर्धारित करता है।

द्वितीय, राजनीति के प्रभाव के फलस्वरूप जाति नया रूप धारण कर रही है। लोकतांत्रिक राजनीति के अंतर्गत राजनीति की प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं के इस प्रकार प्रयोग में लाती है जिससे संबद्ध पक्ष अपने लिए समर्थन जुटा सकें तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सकें। जिस समाज में जाति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण संगठन माना जाता है उसमे यह अत्यंत स्वभाविक है कि राजनीति इस संगठन के माध्यम से अपने आपको संगठित करने का प्रयास करें। इस प्रकार यह कहा जा सकता है जिसे हम राजनीति में जातिवाद के नाम से पुकारते है वह वास्तव में जाति का राजनीतिकरण है।

तृतीय, भारत मे राजनीति 'जाति' के इर्द–गिर्द घूमती है। जाति प्रमुखतम राजनीतिक दल है। यदि मनुष्य राजनीति की दुनिया में ऊंचा उठना चाहता है तो उसे अपने साथ ही अपनी जाति को लेकर चलना होगा। भारत में राजनीतिज्ञ जातीय समुदायों को इसलिए संगठित करते है। ताकि उनके समर्थन से उन्हें सत्ता तक पहुंचने में सहायता मिल सके।

चतुर्थ, जातियां संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग लेती है और इस प्रकार जातिगत भारतीय समाज में जातियां ही 'राजनीतिक शक्तियाँ' बन गयी है।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएं
(CHARACTERISTICS OF CASTE POLITICISATION)

भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका की उभरती विशेषताएं निम्न प्रकार है–

(1) जाति व्यक्ति को बांधने वाली कड़ी है। जातीय संघों और जातीय पंचायतों ने जातिगत राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को बढ़ाया है। जाति–पाति को समाप्त करने वाले आंदोलन अंततोगत्वा नयी जातियों के रूप में मुखरित हुए, जैसे लिंगायत, कबीरपंथी और सिक्ख आंदोलन स्वयं नयी जातियां बन गयी।

(2) शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगिकरण और आधुनिकरण से जातियां समाप्त नहीं हुई, अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला और उनको राजनीतिक भूमिका मिली।

(3) राजनीति में प्रभु जाति (Dominant caste) की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। यदि किसी राज्य विशेष में किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति में जाति एक प्रभावक तत्व बन जाती है।

(4) उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था। जबकि ब्रिटिश शासन ने भारत मे एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली थी। सबसे पहले इनका ध्यान जनगणना कार्यालय की ओर गया जहां जातीय समुदायों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के ध्येय से अपने संगठन का नामकरण कराना आवश्यक समझा। बाद मे अपनी जाति के लोगों के हितों के संरक्षण के लिए जातीय संघों ने प्रस्ताव पारित किए और शासन को अपनी मांगों के लिए प्रभावित करना प्रारंभ किया। यहां तक कि कुछ जातियों ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थाओं में जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरीयों में आरक्षण की मांग की।

(5) निर्वाचनों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलों का अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते है।

(6) जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।

(7) जाति और राजनीति के संबंध स्थैतिक न होकर गतिशील है।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका
(ROLE OF CASTE IN INDIAN POLITICS)

प्रो. वी.के.एन. मेनन का यह निष्कर्ष है कि ''स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा है।'' **मॉरिस जोन्स** भी लिखते हैं कि, 'जाति के लिए राजनीति का महत्व और राजनीति के लिए जाति का महत्व पहले की तुलना में बढ़ गया है।'

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका का उल्लेख निम्न शिर्षकों में किया जा सकता है –

(1) निर्णय प्रक्रिया में जाति की प्रभावक भूमिका – भारत में जातियां संगठित होकर राजनीतिक ओर प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ, संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण के प्रावधान रखे गए हैं जिनके कारण ये जातियां संगठित होकर सरकार पर दबाव डालती हैं कि इन सुविधाओं को और अधिक वर्षों के लिए बढ़ा दिया जाए। अन्य जातियां चाहती है कि आरक्षण समाप्त किया जाए अथवा इसका आधार सामाजिक–आर्थिक स्थिति हो अथवा उन्हें भी आरक्षित सूची में शामिल किया जाए ताकि वे इसके लाभ से वंचित न रह जाए।

(2) राजनीतिक दलों में जातिगत आधार पर निर्णय – भारत मे सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते है। प्रत्येक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र मे प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गणित का अवश्य विश्लेषण करते है।

(3) जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार – भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहा है उस निर्वाचन क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है ताकि संबंधित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त कर सकें।

(4) मंत्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व – राजनीतिक जीवन में जातीयता का सिद्धांत इतना गहरा धंस गया है कि राज्यों के मंत्रिमण्डलों में प्रत्येक प्रमुख जाति का मंत्री होना चाहिए। यह सिद्धांत प्रांतों की राजधानियों से ग्राम पंचायतों तक स्वीकृत हो गया है।

(5) जातिगत दबाव समूह – मेयर के अनुसार, ''जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्ति हुए है।'' जातिगत दबाव समूह अपने निहित स्वार्थों एवं हितों की पूर्ति के लिए नीति–निर्माताओं को प्रभावित करने का प्रयत्न करते है।

(6) जाति एवं प्रशासन – लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है। केंद्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नतियों के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों मे विद्यार्थी की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद है। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयों के क्रियान्वयन में प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते है।

(7) राज्य राजनीति में जाति – माइकेल ब्रेचर के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक हैं यद्यपि किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत प्रभावों से अछूती नहीं रही है। तथापि बिहार, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, राजस्थान, और महाराष्ट्र राज्यों की राजनीति का अध्ययन तो बिना जातिगत गणित के विश्लेषण के कर ही नहीं सकते। बिहार की राजनीति में राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और भूमिहार प्रमुख प्रतिस्पर्द्धी जातियां है। केरल में साम्यवादियों की सफलता का राज यही है, कि उन्होंने 'इजवाहा' जाति को अपने पीछे संगठित कर लिया। आंध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रेड्डी जातियों के संघर्ष की कहानी है। महाराष्ट्र की राजनीति में मराठा, ब्राह्मणों और महरों में प्रतिस्पर्द्धा रही है। गुजरात की राजनीति में दो ही जातियां प्रभावी हैं– पाटीदार और क्षत्रिय। केरल की राजनीति अपने तीन समुदायों के इर्द–गिर्द घूमती रही है– हिंदू, क्रिश्चियन और मुसलमान। राजस्थान में जाट–राजपूत राजनीति में प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी रहे है।

भारतीय राजनीति में धर्म

भारत को हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। अक्सर कहा जाता है कि भारत में धर्म–निरपेक्षवाद का भविष्य अंधकारमय है। यह एक विवादस्पद विषय है।

किन्तु पक्ष में जो तर्क दिया जाता है, कि भारत में धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण में धर्म सबसे बड़ी बाधा है, उसमें कोई दम नहीं। यह कहना अधिक सही होगा कि सबसे बड़ी बाधा आजादी के बाद प्रचलित होती जा रही भ्रष्ट राजनीति है।

चिन्तनात्मक विकास अपने मजहब में गहरी आस्था रखना "साम्प्रदायिकता" नहीं है। मजहब की आजादी तो हर मनुष्य का एक मौलिक अधिकार है। भारत के संविधान ने इस अधिकार को स्वीकारा है। साम्प्रदायिकता का अर्थ है, "मजहब का हौवा खड़ा करके लोगों की भावनाओं को भड़काना और 'राष्ट्रीयता' के बजाए 'मजहबी उन्माद' फैलाना।"

कट्टरपंथी ताकतें राष्ट्र को एकता व प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने से रोकती हैं। वास्तव में भारत में साम्प्रदायिकता का उदय एवं विकास ब्रिटिश शासकों द्वारा किया गया। धर्म एवं जाति के नाम पर सभी लोगों में ईर्ष्या–द्वेष एवं भेदभाव साम्प्रदायिकता को जन्म देते हैं।

परिणामस्वरूप देश में हिंसात्मक घटनाएं प्रतिदिन होती रहती हैं। यह वर्तमान समय की एक विकट समस्या है जिसने समुचित राष्ट्रीय विकास के समस्त मार्ग अवरूद्ध कर दिये हैं। इससे देश की आन्तरिक शान्ति एवं एकता ही नहीं अपितु समूचे विश्व की शान्ति भी भंग होती है।

उपसंहार

स्वभाव से ही राजनीति सारे देश पर अपना प्रभाव डालती है इस, कारण यह कहना सही होगा की भारत में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य राजनीति की प्रकृति से जुड़ा है। यदि स्वच्छ राजनीति का प्रचलन होगा और सभी दल राष्ट्रीय मुद्दों को ईमानदारी से उठाएंगे तब धर्मनिरपेक्षता का भविष्य निश्चय ही उज्जवल होगा।

किन्तु यदि ये दल द्वेष एवं बंटवारे की राजनीति का खेल खेलते रहेंगे, तो उनके वोट बैंक भले ही सुनिश्चित हो जाएंगे, परन्तु धर्मनिरपेक्षवाद और देश का भविष्य अंधकार में ही डूबा रहेगा। हमारा देश इक्कीसवीं सदी में उन्नत रूप में प्रवेश करेगा या विनष्ट दशा में, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इस समस्या से किस प्रकार निपटते हैं।

साम्प्रदायिकता से तात्पर्य किसी धर्म एवं भाषा से है जिसमें किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाता है और इन हितों को राष्ट्रीय हितों से अधिक प्राथमिकता दी जाती है। समूह में पृथकता की भावना पैदा की जाती है और उसे प्रोत्साहन दिया जाता है।

पारसियों, बौद्धों, जैनियों तथा ईसाईयों के अपने–अपने संगठन हैं, साथ ही वे अपने सदस्यों के हितों की साधना में लिप्त रहते हैं, किन्तु ऐसे संगठनो को प्रायः साम्प्रदायिक नहीं कहा जाता क्योंकि इनमें पृथकता की भावना नहीं होती है।
इसके विपरीत, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग एवं अन्य कुछ संस्थाओं को साम्प्रदायिक कहा जा सकता है क्योंकि वे धार्मिक अथवा भाषा समूहों के अधिकारों तथा हितों को राष्ट्रीय हितों से सर्वोपरि रखते हैं। विसेंट स्मिथ के अनुसार एक सामुदायिक व्यक्ति समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषायी समूह को एक ऐसी पृथक सामाजिक तथा राजनीतिक इकाई मानता है, जिसके हित अन्य समूहों से पृथक होते हैं और उनके विरोधी भी हो सकते हैं।
ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या सम्प्रदायिकता कहा जाएगा। साम्प्रदायिक संगठनों का उद्देश्य शासकों के ऊपर दबाव डालकर अपने सदस्यों हेतु अधिक सत्ता, प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना होता है। मानव इतिहास में सदैव धर्म–के नाम पर विवाद उठते रहते है। धर्म की दृष्टि से भारत विशेष रूप से हतभाग्य रहा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय अग्रेजों ने भारत में अपना शासन बनाए रखने के लिए धार्मिक भेद–भावों का विशेष लाभ उठाया। अंग्रेजी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनाओं को राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहाँ प्रतिनिधि या निर्वाचित संस्थाओं की स्थापना थी। अंग्रेज लोग प्रतिनिधित्व का अर्थ अलग–अलग समूहों, वर्गों, हितों, क्षेत्रों, संस्थाओं और सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व समझते थे। उन्होंने भारत के अनेक सम्प्रदायों और जातियों की समस्या को इनके स्वभाविक अस्तित्व बोध और एक–दूसरे की आपस की वैमनस्यता की समस्या को समझा और उसका उपाय अलग–अलग धार्मिक समूहों को पृथक्–पृथक् प्रतिनिधित्व देने में समझा।

भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या हरित शासन की समकालिक है। अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनायी ताकि वे हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़ाते रहें और भारत पर अपनी हुकूमत चलाते रहें।
अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में हिन्दू–मुस्लिम शासकों और नवाबों के हाथों में सत्ता थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी उनसे डरती थी। फलस्वरूप उन्होंने हिन्दुओं की सहायता और सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की। प्लासी के युद्ध के पश्चात् जब कंपनी के हाथ में शासन सत्ता आने लगी तो उसने मुसलमानों के प्रति सौतेला व्यवहार किया और हिन्दुओं को नौकरियों में प्रोत्साहन देकर मुसलमानों के प्रति उपेक्षा की नीति अपनायी। 'वहाबी आन्दोलन' के रूप में मुस्लिम असन्तोष व्यक्त हुआ। अतः अंग्रेजों ने मुसलमानों के विरूध और दमन की नीति अपनायी। कुछ समय पश्चात् हिन्दुओं के विकास, उन्नति और आधुनिकीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति से अंग्रेज डरने लगे। अब उन्होंने मुसलमानों से मित्रता की चातुर्यपूर्ण नीति अपनायी। इसके परिणामस्वरूप 'मुहमंडन–एंग्लो ओरियण्टल डिफेंस एसोसिएशन' की स्थापना हुई।
सन् 1905 में कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया ताकि मुसलमानों की राजभक्ति प्राप्त कर सकें और उन्हें प्रसन्न कर सकें। बंगाल का विभाजन 'फूट डालो और शासन करो' की कुटिल नीति का ही परिणाम था। भारत में सर्वप्रथम धर्म एवं साम्प्रदायिक विभेद का कारण अंग्रेज ही थे। धीरे–धीरे साम्प्रदायिकता की भावना भारत में अपनी जड़े मजबूत करती गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है लेकिन फिर भी भारतीय राजनीति में आज भी साम्प्रदायिक की समस्या बराबर बनी हुई है क्योंकि भारत में अनेक जातियों तथा अनेक धर्मो से सम्बंधित लोग निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने–अपने धर्म की रक्षा करने में लगे रहते हैं तथा धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों को प्रभावित करते रहते है। आज राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति करने हेतु तथा चुनाव में वोट प्राप्त करने के लिए विभिन्न धर्मो या सम्प्रदायों का सहारा लेते हैं। मुसलमानों में पृथक्करण की भावना भी साम्प्रदयिकता का कारण बनी है, इसीलिए वे अपने आपको राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित नहीं कर पाए।
अनेक मुस्लिम नेताओं ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे समय–समय पर राजनीतिक दलों का सहयोग देंगे एवं समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता एवं आर्थिक न्याय को बनाए रखेंगे परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ क्योकि अनेक मुस्लिम नेता चाहते हैं कि मुस्लिम धर्म के हितों की रक्षा के लिए उन्हें पृथक् रूप से राजनीति में भाग लेना चाहिए। स्वाधीनता से पूर्व एवं पश्चात् मुसलमान आर्थिक रूप से पिछड़े हुये रहे हैं। दृष्टि से भी पिछड़े होने के कारण सरकारी नौकरियों, व्यापार एवं उद्योग–धंधों में उनकी स्थिति सुधर नहीं पाई है जिससे उनका मनोबल गिरा है और उनमें असन्तोष बढ़ा है।
फलतः इस असन्तोष ने उग्र रूप धारण कर हिंसा का रूप ले लिया और जब कभी भारत में हिन्दू–मुस्लिम तनाव की कोई छुट–पुट घटना हो जाती है तो पाकिस्तानी रेडियों एवं समाचार पत्र इसको तूल देने का प्रयास करते हैं तथा भारत सरकार की आलोचना करते है। भारत में हिन्दू–सम्प्रदाय से सम्बंधित ऐसे लोग हैं जो इस बात का प्रचार करते हैं कि भारत हिन्दुओं का देश है। अतः इस देश पर उन्हीं का अधिकार हैं। इन संगठनों पर हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विशेष रूप से प्रभाव रहा है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ मुसलमानों हा कट्टर विरोधी है। इस प्रकार के विचार साम्प्रदायिकता की भावना उत्पन्न करते हैं। साम्प्रदायिक रंगों का एक अन्य कारण सरकार एवं प्रशासन की उदासीनता भी है। अतः स्वतन्त्रता के बाद भी साम्प्रदायिकता कम नहीं हुई अपितु इसमें वृद्धि ही हुई है, किन्तु इस विषय में स्थिति विभिन्न क्षेत्रों एवं नगरों में भिन्न–भिन्न है।

रत्ना नायडू के शब्दों में, "ऐसे नगर जिनमें बड़े साम्प्रदायिक उपद्रव हुये हैं, दो प्रकार के है। इनमें एक प्रकार के नगर वे है जो औद्योगिक नगर हैं और दूसरे प्रकार के वे जो दस्तकारी एवं उद्योगों के नगर हैं तथा जो उद्योग एवं व्यापार के आधुनिक केन्द्रों के रूप में विकसित होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रथम वर्ग के उदाहरण जमशेदपुर, राउरकेला, आदि हैं और दूसरे वर्ग के उदाहरण मुरादाबाद, अलीगढ़, अहमदाबाद, बनारस आदि हैं। वास्तव में साम्प्रदायिकता की भावना को फैलाने वाले तत्व राजनीतिक दल ही हैं।" आजकल सम्प्रदायों की धार्मिक भावनाओं का आज दुरूपयोग किया जा रहा है, यह दर्शाने के लिए कि एक सम्पद्राय दूसरे को नष्ट करने पर उतारू है, उनके रीति–रिवाजों एवं व्यवहारों में अन्तर को उछाला जा रहा हैं। अतः ऐसे मामलों का कोई स्थायी समाधान नहीं हो सकता। स्वयं लोगों को आपसी दुर्भावना को समाप्त करना होगा। "इस प्रकार भय, अविश्वास और दोनों समुदाय के बीच एक दूसरे के प्रति सन्देह की भावना ही साम्प्रदायिक वैमनस्य का मुख्य कारण है।" जब सरकार समस्या के मूल कारणों की चर्चा करने के बजाय 'विदेशी हाथ' की चर्चा करके ही संतुष्ट हो जाती हो तो समस्या का भयावह रूप धारण कर लेना स्वभाविक ही है। साम्प्रदायिकता के कारण भारत में आज समाज को, राष्ट्रीय एकता एवं अनेक संगठनों को कितना खतरा पैदा हो गया है, इसका अनुमान भारत में होने वाली प्रतिदिन की हिंसात्मक घटनाएं बता देती हैं। भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता हेतु किसे दोषी ठहराया जाए यह एक प्रश्नचिन्ह ही है। वर्तमान राजनीतिक अस्थिरता साम्प्रदायिकता का ही परिणाम है क्योंकि साम्प्रदायिकता ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है जो राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न करती हैं

यह राष्ट्रीय एकता की भी गम्भीर शत्रु है क्योंकि इसी के वशीभूत हो लोग अपने–अपने तुच्छ स्वार्थो एवं हितों के लिए संघर्ष करते है और देश में हिंसा, लड़ाई–झगड़े फैलाते हैं और परिणामस्वरूप लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। शायद ही कोई ऐसा साम्प्रदायिक दंगा हुआ हो जिसमें कुछ व्यक्तियों की जाने न गयी हों। भारत एक बहुसम्प्रदायवादी देश है।

यहाँ अनेक अल्पंसख्यक एवं बहुसंख्यक व्यक्ति निवास करते हैं और इन्हीं के बीच जो साम्प्रदायिकता, झगड़े और तनाव पैदा होते हैं तथा हिन्दू एवं मुसलमानों द्वारा अपने–अपने हितों के लिए सरकार से लड़ना एवं आपसी द्वेष और वैमनस्य फैलाना, राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु गंभीर खतरा पैदा कर देते हैं। फलतः इन सभी दुष्परिणामों के कारण देश की आर्थिक हानि होती है। न जाने कितनी दुकानें लूटी जाती है, कितनी ही राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, कितने ही लोग कार्य नहीं कर पाते। इतना ही नहीं, साम्प्रदायिक दंगों पर काबू पाने के लिए अत्यधिक धन व्यय किया जाता है। आर्थिक उन्नति व औद्योगिक विकास में बाधा पड़ती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है किन्तु फिर भी भारतीय राजनीति को धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रभावित किये हुये हैं। एक ओर धर्म प्रभाव एवं शक्ति अर्जित करने का माध्यम है तो दूसरी ओर इसके द्वारा राजनीति में तनाव पैदा होते हैं क्योंकि वर्तमान समय में धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण होता है तथा राजनीतिक दलों को चुनाव के समय धर्म या सम्प्रदायों का समर्थन मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से वर्तमान समय तक धर्म और सम्प्रदाय ने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतन्त्र भारत में अधिकांश राजनीतिक दलों का गठन धर्म व सम्प्रदाय के आधार पर हुआ है, जैसे हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, अकाली दल आदि।

इन साम्प्रदायिक दलों ने राजनीति में धर्म के विशेष महत्व दिया है। आज राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति करने के लिए तथा चुनाव में वोट प्राप्त करने के लिए विभिन्न धर्म व सम्प्रदायों का सहारा लेते हैं। वास्तव में देखा जाए तो प्रत्येक राजनीतिक दल का किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध अवश्य होता है। प्रोफेसर मॉरिस जोन्स के अनुसार "यदि साम्प्रदायिकता को संकुचित अर्थ में लिखा जाए, अर्थात् कोई राजनीतिक पार्टी किसी विशेष धार्मिक समुदाय के राजनीतिक दावों की रक्षा के लिए बनी हो तो कुछ पार्टियां ऐसी हैं जो स्पष्ट रूप से अपने को साम्प्रदायिक कहती हैं जैसे मुस्लिम लीग जो भारत में सिर्फ दक्षिण भारत में रह गयी है और जो मालाबार मोपला समुदाय के बल पर केवल केरल में ही शक्तिशाली है, सिक्खों की अकाली पार्टी जो सिर्फ पंजाब में ही है, हिन्दू महासभा जो सिद्धान्त रूप में एक अखिल भारतीय पार्टी है, किन्तु मुख्य रूप से मध्य प्रदेश और उसके आस–पास के इलाकों में शक्तिशाली है।"

जनसंघ दल के विषय में मॉरिस जोन्स लिखते हैं, "जब तक कट्टरता की मनोवृत्ति से पूर्ण आर.एस.एस. जिसमें हिन्दू सांस्कृतिक जोश और सैन्यवादी ट्रेनिंग दोनों का संयोग है जनसंघ की आई में जुटकर काम करता रहेगा, तब तक साम्प्रदायिकता इस पार्टी का एक महत्वपूर्ण पहलू बनी रहेगी।"

दूसरे और व्यापक अर्थ में इसका अर्थ सम्पूर्ण हिन्दू समाज के ही भीतर किसी सामाजिक–धार्मिक समुदाय के साथ संबध के रूप में लिया जाए तो सभी पार्टियों में किसी न किसी रूप में यह भावना अवश्य विद्यमान होती है। कांग्रेस भी इससे अछूती नहीं रही है। केरल में ईसाइ समुदाय के साथ कांग्रेस का ऐसा गठजोड़ रहा है कि इसे संकुचित दृष्टि से भी साम्प्रदायिकता कहा गया है। आज भारतीय राजनीति में धार्मिक संगठन शक्तिशाली दबाव समूहों की भूमिका निभा रहे हैं। ये धार्मिक संगठन शासन की नीतियों को समय–समय पर प्रभावित करते रहते है और अपने हितों के अनुकूल निर्णय पारित करवाने का प्रयत्न करते रहते हैं। उदाहरणार्थ, मुस्लिम धार्मिक संगठनों जैसे जमायते इस्लामी, उलमा–ए–हिन्द अमारते शरिया ने सरकारी नीतियों को प्रभावित कर अपने हितों में तीन महत्वपूर्ण बातों को मनवाया–प्रथम, उर्दू को संवैधानिक संरक्षण दिया गया।

द्वितीय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय का अल्पसंख्यक स्वरूप स्थापित किया जाए। तृतीय, मुस्लिम निजी कानून से सम्बन्धित कोई परिवर्तन न किया जाए। इसके विपरीत हिन्दू धार्मिक संगठन सरकारी नीतियों को प्रभावित करने में सफल नहीं हो पाए, जिस कारण हिन्दुओं की आपत्ति व आलोचनाओं के बावजूद भी सरकार ने हिन्दू कोड बिल पारित कर दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि धार्मिक संगठन सरकारी नीतियों को प्रभावित करने में सफल हो जाते है वे अपने हित में कानून पारित करवा सकते हैं। भारतीय राजनीति में कई बार अप्रत्यक्ष रूप से धर्म के आधार पर पृथक् राज्यों की माँग की गई है। उदाहरण के लिए पंजाब का विभाजन धर्म के आधार पर ही हुआ था। अभी भी पंजाब धर्म के आधार पर ही 'खालिस्तान' की माँग कर रहा है।

नागालैण्ड के ईसाईयों ने भी धर्म के आधार पर ही पृथक् राज्य की माँग की थी। राज्यो की राजनीति में भी धर्म और धार्मिक समुदायों ने अनेक तरह से प्रभाव डाला है, इसके अतिरिक्त धर्म एवं साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता के लिए भी घातक माने जाते हैं। देश का विभाजन धार्मिक मतभेदों के कारण ही हुआ था और आज भी विघटनकारी तत्व सक्रिय है।

मन्त्रिमण्डल निर्माण में भी धार्मिक आधार पर प्रतिनिधित्व को प्रदान की जाती है। केन्द्र एवं राज्यों में मन्त्रिमण्डल बनाते समय हमेशा इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि प्रमुख सम्प्रदायी और धार्मिक विश्वासी वाले व्यक्तियों को उनमें प्रतिनिधित्व मिल जाए। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में अल्पसंख्यकों जैसे मुसलमानों, सिक्खों, ईसाईयों को हमेशा प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

भारत में चुनाव के समय विभिन्न राजनीतिक दल एवं उनके नेता धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर वोट मांगते हैं। वोट बटोरने के लिए मठाधीशों, इमामी, पादरियों और साधुओं के साथ सांठ–गांठ की जाती है। अतः यही कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति में धर्म एवं साम्प्रदायिकता का प्रभाव बढ़ने से धर्मनिरपेक्ष राजनीति के विकास का मार्ग अवरूद्ध हुआ है। भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करने का लक्ष्य यह था कि धर्म को राजनीति से पृथक् रखा जाए लेकिन व्यवहार में धर्म का प्रभाव भारतीय जनता पर छाया हुआ है। आज भी राजनीति एवं सामाजिक क्षेत्र में धर्म के आधार पर भेदभाव किया जाता है। वास्तव में आज धर्म और सम्प्रदाय राजनीति का शोषण करने लगे हैं।

साम्प्रदायिकता मानवता हेतु गम्भीर अभिशाप है और भारत जैसे में तो यह और भी घातक है, क्योंकि भारत विविध धर्मों का देश है। साम्प्रदायिकता को दूर किया जा सकता है यदि सरकार ध्यान रखे कि देश में कोई भी ऐसा कार्य न होने पाए जिससे कि साम्प्रदायिकता बढ़े, सर्वत्र इस भावना का प्रोत्साहन दिया जाए कि सब धर्मों के लोग मिल–जुलकर रोज मौन प्रार्थना करें, शिक्षा एवं शिक्षण संस्थाओं में आध्यात्मिक मूल्यों एवं आदर्शें का समावेश किया जाए, किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में बहुमत के आधार पर कोई प्रवृत्ति पैदा न की जाए, सरकार, को भी हमेशा इस प्रकार के कानूनों का निर्माण करना चाहिए जो सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू हों। जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय एवं आधार पर किसी के साथ भी भेदभाव न किया जाए, विभिन्न सम्प्रदाय सरकार से अपने विशेष प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं। सरकार को इन सबके प्रभाव को केवल साम्प्रदायिक्ता के आधार पर ठुकराना होगा तथा भाषा के आधार पर भी सरकार को अपनी नीति ठीक करनी होगी।

निष्कर्षतः – कहा जा सकता है कि हम भारतीय है, हमे इस बात पर गर्व है क्योंकि यहाँ विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं। इसीलिए भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है जिससे कि धर्म को राजनीति से हटाया जाए, किन्तु धर्म

का प्रभाव व्यावहारिक रूप से भारतीय जनता के मन–मस्तिष्क से नहीं मिट पाया है। आज भी राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में धर्म के आधार पर भेदभाव किये जाते हैं। राजनीतिक और राजनीतिक दल धर्म एवं सम्प्रदाय को राजनीतिक सफलता के लिए एक साधन के रूप में अपनाते रहे है। साम्प्रदायिक झगड़े भले ही छुटपुट और स्थानीय हों, लेकिन उनके देश की बदनामी होती है और उसका लोकतान्त्रिक धर्मनिरपेक्ष स्वरूप कलंकित होता है क्योंकि साम्प्रदायिक्ता का उद्देश्य संकुचित हितो की रक्षा करना होता है।

अतः राष्ट्रीय नेताओं पर यह दायित्व है कि वे समुदाय के सीमित तथा राष्ट्र के वृहत्तर हितो के मध्य सन्तुलन स्थापित करें, समुदाय को राष्ट्र में बदलें। भविष्य में यह आशा व्यक्त की जा सकती है कि राजनीतिक चेतना एवं लोकतान्त्रिक आदर्शों एवं मूल्यों में वृद्धि होने से देश में धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप भी निखरता जाएगा।